165

ओ३म्

प्राचीन श्री सत्यनारायण कथा

प्रकाशक : अमर स्वामी प्रकाशन विभाग

प्राचीन श्री सत्यनारायण कथा

लेखक
पं. गंगाधर शास्त्री (व्याकरणाचार्य)
महोपदेशक, बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा
नया टोला, पटना- ४
सम्पादक
लाजपतराय अग्रवाल
(वैदिक मिशनरी)

प्रकाशक
अमर स्वामी प्रकाशन विभाग
१०५८, विवेकानन्द नगर गाजियाबाद-२०१००१
(उत्तर प्रदेश) भारत
E-mail : www.lajpatraiaggarwall058@gmail.com
website : amarswamiprakashanvibhag.com

द्वितीय आवृत्ति
अप्रैल सन् २०१२ ई०



मूल्यः भारत में - पन्द्रह रुपये
विदेशों में - पाँच डॉलर



लेखक : पं0 गंगाधर शास्त्री (व्याकरणाचार्य)

प्रकाशन : अमर स्वामी प्रकाशन विभाग,
गाजियाबाद- २०१००१ (उ.प्र.)
दूरभाष- (०१२०) २७०१०६५

मुद्रक : स्वास्तिक ऑफसैट प्रिटिंग प्रैस, गाजियाबाद,
(मो.-९८९१८१२७७१)

शब्द संयोजक : कृष्णा कम्प्यूटर्स, गाजियाबाद
चलभाष: ०६३५०३५००७५

सम्पादक : लाजपत राय अग्रवाल (वैदिक मिशनरी)

संस्करण : द्वितीय जुलाई सन् २०१२ ई०

मूल्य : पन्द्रह रुपये (विदेशों में पाँच डॉलर)

नोट : भारत में हमारे सभी वितरकों के पास उपलब्ध

Pracheen Shri Satya Narayan Katha

Author - Pt. Gangadhar Shastri

Published by: Lajpat Rai Aggarwal (vedic missionary)

AMAR SAWAMI PRAKASHAN VIBHAG
1058- Vivekanand Nagar, Ghaziabad- 201001 (U.P.)

II Adition, April. 2012  **Price : Rs. 15/**

कथा महात्म्य

जो भी भक्त जन इस कथा को सुनेंगे व सुन कर जीवन में उतारेंगे तो निश्चित रूप से उनका कल्याण होगा ! वे सभी श्रोताजन सांसारिक अपार दुख से छूट कर यश, श्रैय एवं सुख को प्राप्त करेंगे।

आभाराभिव्यक्ति



श्री महेश आर्य



महात्मा अजुर्न आर्य वानप्रस्थी

आज तक जितनी भी सत्यनारायण कथा छपी हैं, उन सभी में जो अभाव खटकता था, उसे पण्डित गंगाधर शास्त्री कृत प्रस्तुत पुस्तक ने पूरा कर दिया ! ऐसी महत्वपूर्ण पुस्तक आज तक प्रकाशित नहीं हुई। इसका पुनर्मुद्रण हो ऐसा विचार कर हमने अमर स्वामी प्रकाशन विभाग-गाजियाबाद के प्रतिष्ठाता श्री लाजपत राय अग्रवाल जी से अनुरोध किया कि अगर यह पुस्तक किसी तरह प्रकाश में आ जाये तो मानव मात्र का बड़ा कल्याण होगा तथा उन्हें नई जानकारी प्राप्त होगी। उन्होंने हमारी प्रार्थना को सहर्ष स्वीकार कर लिया, हमें यह भी प्रसन्नता है कि ऐसी महत्वपूर्ण पुस्तक अति प्रसिद्ध प्रकाशन के अन्तर्गत प्रकाशित हो रही है, जहां से इसका

प्रचार-प्रसार देश-विदेश में चहुँ ओर होगा, और सभी भक्तजन इस कथा के श्रवण से इसका भरपूर लाभ उठायेंगे।

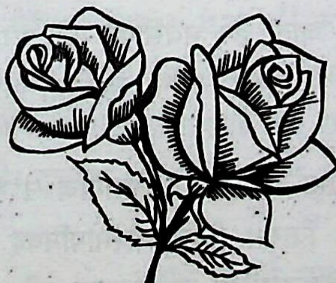
इस पुनीत कार्य के लिए हम पुनः अमर स्वामी प्रकाशन विभाग गाजियाबाद के प्रति अपना आभार प्रकट करते हैं।

निवेदक:

महात्मा अर्जुन आर्य- प्रधान वानप्रस्थी 09748901430

महेश आर्य-मन्त्री मो0- 09748579819 -07501063459

पता- आर्य समाज विद्या सागर
166- केशव चन्द्र सैन स्ट्रीट
कोलकाता- 7000006



भूमिका

भारतीय प्रजा में सत्यनारायण व्रत कथा का प्रचार बहुत है। प्रत्येक शुभकार्य में सत्यव्रत की कथा के साथ देवपूजन का भी विस्तार है। इस समय जो सत्यनारायण कथा सर्वत्र प्रचलित है, वह स्कन्द पुराण की कथा है। इस कथा के श्रवण करने के पश्चात् भी यह जिज्ञासा बनी रहती है कि यह तो लीलावती, कलावती और एक साधु वणिक् की कथा है। किन्तु प्रश्न यह पैदा होता है कि, आखिर वह वास्तविक कथा क्या है? जिसके अपमान के कारण साधु वणिक को दुर्दैव का शिकार होना पड़ा। स्कन्दपुराण वाली कथा इसका उत्तर नहीं दे सकती है। हमारी सम्मति में सत्यदेव की कथा का तात्पर्य है सत्यब्रह्म की कथा। ईश्वर जो सत्यमय है उसकी अवहेलना करने से मानव दुःख सागर में निमग्न हो जाता है। भवसागर को पार करने के लिए सत्यब्रह्म की उपासना करनी चाहिए। **''न हि सत्यात् परोधर्मः।''**

इसी सत्यब्रह्म के लिए आर्यसमाज ने प्रश्नोपनिषद् का प्रचार आरम्भ किया। किन्तु प्रश्नोपनिषद् दुरूह, सर्वजन सुबोध्य नहीं है। इसलिए इस अभाव की पूर्ति हेतु श्री पं. गंगाधर शास्त्री, व्याकरणाचार्य महोपदेशक, आर्य प्रतिनिधि

सभा, बिहार ने इसे अनुष्टुप छन्द में आबद्ध कर दिया है। इन श्लोकों से यह सत्यदेव कथा सरल एवं सुबोध हो गयी है। शास्त्रीजी के भावपूर्ण श्लोकों से उपनिषद् का असली तात्पर्य भी सुरक्षित रह गया है।

मैं चाहता हूं कि इस कथा का प्रचार प्रत्येक आर्य (हिन्दू) घर में हो।

आचार्य- रामानन्द शास्त्री
(उप-प्रधान)

रामनवमी, २०१७
बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा,
पटना-४

सूचना

आर्य जगत के प्रसिद्ध विद्वान श्री पण्डित गंगाधर शास्त्री द्वारा विरचित "**वैदिक विवाह पद्धति**" का प्रकाशन भी हमारे द्वारा अतिशीघ्र किया जा रहा है, जिसमें विवाह के अन्तगर्त होने वाली समस्त प्रक्रियाओं का रहस्य सविस्तार समझाया गया है। इच्छुक सज्जन प्रकाशन से सम्पर्क करें।

"व्यवस्थापक"

अमर स्वामी प्रकाशन विभाग

सम्पादकीय


लाजपत राय अग्रवाल
(वैदिक मिशनरी)

श्री पण्डित गंगाधर शास्त्री जी के पाण्डित्य को कौन नहीं जानता? बिहार प्रान्त में तो उनके पाण्डित्य की चहुँ ओंर दुन्दुभी बजती थी, आज भी पुराने लोग उनको याद करते हैं, मेरा उनसे बहुत ही मधुर और निकटता का सम्बन्ध था, उनका मेरे ऊपर बहुत स्नेह था। मेरे सामने जब इस पुस्तक के छापने का सवाल आया तो मेरे स्वीकार करने स्वीकार करने के अनेकों कारण थे, उनमें से मुख्य ये था कि आज तक किसी ने भी सत्य नारायण की कथा नहीं सुनी, अपितु उसके महात्म्य को ही सुना, कि उसने वह कथा सुनी तो उसका कल्याण हो गया, उसने सुनी तो वह धनवान हो गया, परन्तु वह कथा थी क्या? यह आज तक कोई नहीं बता सकता। भाईयों ! यही वह कथा थी जिसे सुनकर सबका कल्याण हुआ, जिसे आप भी पढ़िये और लाभ उठाइये। इसे मैं अपना सौभाग्य मानता हूं कि ऐसी महत्वपूर्ण पुस्तक का सम्पादन व प्रकाशन मेरे द्वारा हुआ, यही स्वर्गीय पण्डित जी के प्रति मेरी सच्ची श्रद्धांजली है, आर्य समाज विद्या सागर-कोलकाता के अधिकारी गण बधाई के पात्र हैं, जिन्होंने इस कार्य में अपनी रूचि दिखाई। अस्तु !!

विदुषामनुचरः
लाजपतराय अग्रवाल
(वैदिक मिशनरी)

सत्यस्य ग्रहणे नित्यम्, असत्यस्य निवारणे ।
सर्वदा सर्वतः सर्वैः, भाव्यं धर्मस्य हेतवे ।।१।।
पितुः सत्यस्य रक्षार्थम् वेदधर्ममनुस्मरन् ।
ततापं गिरि कुञ्जेषु, रामः सीतासमन्वितः ।।२।।
हरिश्चन्द्रस्य दृष्टान्तः वाचिवाचि प्रतिष्ठितः ।
पीतं हालाहलं घोरम्, दयानन्द महर्षिणा ।।३।।
सत्यदेवमुपासीत व्रतं सत्यं समाचरन् ।
कथा ह सत्यदेवस्य गेहे गेहे प्रतिष्ठितम् ।।४।।
सत्यो हि भगवान् देवः सत्यो लोक उदोरितः ।
सत्येन पालिता भूमिः सत्यो धर्मः नातनः ।।५।।

सम्मतियाँ

(१) आर्यजगत् के महान् नेता, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली, के भूतपूर्व प्रधान पूज्य-

श्री स्वामी अभेदानन्द सरस्वती

श्री पं. गंगाधर शास्त्री व्याकरणाचार्य महोपदेशक, बिहार-राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा, पटना ने प्रश्नोपनिषद् की संस्कृत पद्यात्मक टीका बड़ी तत्परता से की है। टीका में भाव-भावना की पूर्ण रक्षा करते हुए सरल राष्ट्रभाषा में भी अर्थ प्रकाशित करते हुए महान् उपकार किया है। अनुवाद

स्पष्ट, सुगम और रोचक है। सर्वतोभावेन शास्त्रीजी का प्रयत्न उपादेय होगा ऐसी मेरी आंतरिक कामना है।

"अभेदानन्द सरस्वती"

(२) महाविद्वान् अध्यात्म विद्या के साक्षात् स्वरूप आदित्य ब्रह्मचारी अखिलानन्दजी महाराज-झरिया (बिहार) निवासी

आजकल सम्पूर्ण भारतवर्ष में सत्यनारायण कथा का विस्तार है। प्रत्येक परिवार में प्रत्येक शुभ कार्य में इस कथा को आस्तिक जन सुनते और सुनाते हैं। परन्तु इस लीलावती आदि की कथा सुनने के बाद यह शंका उत्पन्न हो जाती है कि वास्तव में वह कथा कौन सी है जिसे इन लोगों ने सुना था। उत्तर प्राप्त नहीं होता, शंका साथ नहीं छोड़ती। क्यों? यह कथा क्या है? हाँ है, जिसे हम प्रश्नोपनिषद् कहते हैं। पर उस उपनिषद् की भाषा सरल सुगम नहीं होने से कथावाचक और श्रोता दोनों को बड़े ही कष्ट का अनुभव करना पड़ता है। इसी कष्ट को दूर करने के लिए श्री पं. गंगाधर शास्त्री व्याकरणाचार्य महोपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा बिहार ने सरल सुन्दर सुबोध संस्कृत में श्लोकबद्ध कर दिया है। आशा है शास्त्री जी के इस परिश्रम से जनता जनार्दन को महान् लाभ होगा, यह मेरी शुभ कामना है।

-'अखिलानन्द'

(३) आर्यसमाज के नेता व्याख्या-वाचस्पति

श्री बिहारी लाल जी, शास्त्री, सुभाषनगर, बरेली

श्री सत्यनारायण की कथा का प्रचार हिन्दुओं में हिमालय से लेकर गुजरात महाराष्ट्र तक फैला हुआ है। मंगलकामना से आस्तिक हिन्दू जनता हवन और कथा का आयोजन प्रायः किया करती है। प्रचलित कथा स्कन्द पुराण, रेवा खण्ड का अंश कहलाती है। परन्तु स्कन्द पुराण के रेवा खण्ड में यह कथा कहीं नहीं मिलती।

कथा है बड़ी रोचक और शिक्षाप्रद। इसमें यही परिणाम निकाला गया है कि सत्य के व्रत से ब्राह्मण की दरिद्रता दूर हो गई। लकड़हारे का अर्थसंकट दूर हो गया, वैश्य ने जब तक सत्य का व्रत धारण नहीं किया तब तक संकटग्रस्त रहा। परन्तु जब दृढ़ता से सत्य को अपना लिया तब धन व सन्तान से सुखी हो गया। राजा तुंगध्वज ने अभिमान-वश गोपालों का प्रसाद नहीं लिया तब वह भी दुःख में पड़ गया। परन्तु जब नम्र बना तब उसका भी मंगल हुआ। अभिमान त्याग, भगवत्प्रेम और सत्याचरण यही इस कथा का संदेश है।

पर कथा में पौराणिक मान्यताओं का पुट लगा हुआ है। इसीलिए आर्यसमाजियों के यहाँ उपयुक्त नहीं रहती। लेकिन

ऐसे आयोजनों को चाहते वे भी हैं। आर्यभाइयों की इस इच्छापूर्ति के लिए श्री पं. गंगाधर शास्त्री व्याकरणाचार्य ने वैदिक सिद्धान्तों से पूर्ण यह सत्यनारायण की कथा तैयार की है। पहले भी सत्यनारायण की कथा के नाम से प्रश्नोपनिषद् का श्री पं. वंशीधरजी पाठक बरेली निवासी ने छपवाया था पर गूढ़ विषय होने से यह कथा आर्यजनों में अधिक चालू नहीं हुई। अब श्री पं. गंगाधरजी शास्त्री ने इसी उपनिषद् को लौकिक संस्कृत शब्दों में रचकर इतनी रोचक कथा बना दी है कि सर्वसाधारण की रूचि के अनुकूल बन गई है।

इस कथा का पूर्ण स्वागत हिन्दू जनता में होगा ऐसी मुझे पूर्ण आशा है। मैंने यह कथा पण्डितजी से सुन कर जाँच ली है। मैं इस कथा का सर्मथन करता हूँ। आर्य भाइयों को प्रेरणा देता हूँ कि इसका आप भी हार्दिक स्वागत करें।

दुष्टकर्म विपाकैश्च, जनान् दृष्ट्वा सुदुःखितान् ॥
लोकेऽस्मिन् करुणांकृत्वा कथामरचयत् सुधीः ॥१॥

सत्यत्यक्त्वा प्रभुंहित्वा ह्यासुरीभावमाश्रिताः ॥
पापं कुर्वन्ति निर्भीता मनुष्या गोहपीड़िताः ॥२॥

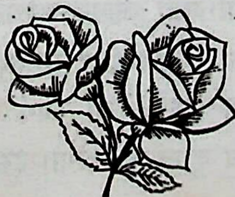
इति निश्चित्व मनसा श्रीमान् गङ्गाधरः सुधीः ॥
आर्षभावं समाश्रित्य कथामेतां च प्रैरयत् ॥३॥

वेदोपनिषदां सारं समाहृत्य प्रयत्नतः ॥
कथारूपमवात् पुण्यं लोकानां हितकाम्यया ॥४॥

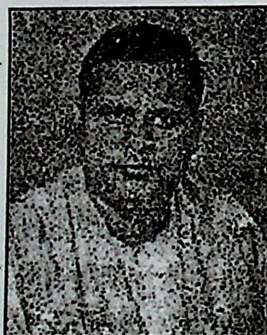
कथां ये कथयिष्यन्ति ये श्रोष्यन्ति सुभक्तितः ॥
तेषां सर्वाणिदुःखानि नाशं यास्यन्ति निश्चयम् ॥५॥

ब्रह्मप्रीतियुता दिव्या चर्षिसंवादसंयुता ॥
पावमानो जनानां हि बहुकल्याणकारिणी ॥६॥

सत्यज्ञान प्रदात्रीयं भवमोह विदारिका ॥
सत्याचार प्रदात्रीयं सत्यनारायणी कथा ॥७॥



दो शब्द


श्री पं० गंगाधर शास्त्रीः

आर्यावर्त के प्रायः सभी हिन्दू परिवारों में विवाह आदि मंगल कार्य के अवसर पर श्रीसत्यनारायण की कथा होती है, ऐसा कोई भी हिन्दू नहीं होगा जिसने श्रीसत्यनारायण की कथा न सुनी हो। पर थोड़ा गंभीरतापूर्वक विचार करने पर पता चलता है कि वास्तविक सत्यनारायण की कथा सुनते हैं या नहीं? आज तक जिस कथा को चिरकाल से सुनते आ रहे हैं उस कथा को ही देखने से पता चलता है कि वह कथा का एकमात्र महात्म्य है, क्योंकि उसी कथा में आया है कि जब नारद भगवान मृत्यु-लोक से विष्णुलोक को गये और नमस्ते आदि कर जब विष्णु भगवान् के पास बैठे तो विष्णु भगवान् ने नारद से पूछा कि महाराज आने का कारण बतावें, तब नारद ने कहा प्रभो ! मृत्युलोक में सभी लोग दुःख ही दुःख भोग रहे हैं उनका दुःख दूर कैसे होगा यही जानने आया हूँ। तब श्रीविष्णु भगवान् ने कहा कि - **व्रतमस्ति महत्पूण्यंस्वर्गे लोके च दुर्लभम्** अर्थात् एक व्रत है जो स्वर्ग लोक में दुर्लभ है, जिसके सुनने से सब दुःख दूर होगा। इस पर नारद ने कहा

महाराज किं फलं किं विधानं च श्रुतं केन च तत्व्रतम् अर्थात् उस व्रत का फल क्या है, उसका विधान क्या है तथा उस व्रत को किन लोगों ने सुना है? उस पर श्रीविष्णु भगवान् ने कहा कि- **दुःख शोकादि शमनं धन धान्य विवर्धनम् सौभाग्य संततिकरं सर्वत्र विजयप्रदम्** अर्थात् दुःख शोकादि शान्त करने वाला सौभाग्य, संतति और विजय को प्रदान करने वाला है, जिस किसी दिन अपनी इच्छा के अनुसार बन्धुबान्धवों को बुलाकर प्रसाद आदि एकत्रित कर ब्राह्मण से कथा सुनकर उसे दक्षिणा देवें, इस कथा को सर्वप्रथम काशी के वृद्ध ब्राह्मण ने सुना उसके सभी दुःख दूर हो गये, उसके बाद काष्ठक्रेता ने सुना साधुबनियाँ तथा तंगध्वज राजा के सुनने की बात आयी है। पर वह कथा कौन सी थी जिसे इन लोगों ने सुना था? कथा अपनी जगह पर रह गई केवल कथा सुनने वाले की कथा सभी सुनने लगे। वास्तविक जो कथा थी वह प्रश्नोपनिषद् की कथा थी यह कथा गंभीर होने से सुनने और सुनाने में साधारण पण्डितों के लिए सुलभ नहीं थी, अतः उस प्रश्नोपनिषद् को सरल संस्कृत में श्लोकबद्ध कर सात अध्यायों में जनता जनार्दन के सामने प्रस्तुत करता हूँ आशा है मेरे इस परिश्रम से जनता को लाभ होगा।

विदुषामनुचरो-

गङ्गाधर शास्त्रीः

कथाविधिः

कथापूर्व विधातव्यमग्निहोत्रं विधानतः ।
प्रार्थनातः समारभ्य सोमान्येन विसर्जयेत् ।।१।।

कथान्ते चागतेभ्यश्च श्रोतृभ्यः पाठकाय च ।
प्रसादं भक्ति युक्तेन दद्याद्गेही मुदान्वितः ।।२।।

सुन्दराणि सु पक्वानि फलानि विविधानि च ।
घृतपक्वश्च नैवेद्यं पूर्वतः स्थापयेद् व्रती ।।३।।

सात्विकञ्चैव दातव्यं न कदन्नं न मादकम् ।
एवन्माचरितुर्लोके सफलं वाच्छितं भवेत् ।।४।।

कथायाः पाठको धीमान् कथामर्मप्रबोधकः ।
कथान्ते तोषणीयः स्याद् वस्त्रद्रव्यप्रदानतः ।।५।।

कथायाः श्रवणं कृत्वा तद्वदेवा चरन्ति ये ।
तेषाञ्च सफलो लोकः परलोकः सुखावहः ।।६।।

अथ श्रीसत्यनारायण कथायां प्रारम्भः

प्रथमोऽध्यायः

ओंकार ! सच्चिदानन्द ! सर्वेषां परिपालक ।
प्रयच्छ विमलां मेघां ग्रन्थारम्भं करोम्यहम् ।।

एकदा सुन्दरारण्ये बहुभिः परिवेष्ठितः ।
ऋषिभिः पिप्पलादोऽसौभातिस्मादित्यवद्गुणैः ।।१।।

एक समय सुन्दर वन में ऋषियों के मध्य बैठे हुए महर्षि पिप्पलाद सूर्य्य की ज्योति के समान देदीप्यमान हो रहे थे।

तदेव सर्वभूतानां सर्वदा शुभचिन्तकाः ।
योगे चित्तप्रदातारो ज्ञाननिर्धूत कल्मषाः ।।२।।

उसी समय सम्पूर्ण प्राणियों के शुभचिन्तक, योग में निरत और ज्ञान के द्वारा जिन्होंने अपने को पवित्र कर लिया है ऐसे-

ब्रह्मपरा ब्रह्मनिष्ठा, ब्रह्मज्ञानं पिपासवः ।
पिप्पलादमृषिजग्मुः सुकेशाद्यास्तपोधनाः ।।३।।

और ब्रह्म के भक्त, ब्रह्मप्राप्ति की कामना रखनेवाले, ब्रह्मरस के पिपासु सुकेश आदि ऋषि पिप्पलाद के पास गये।

भारद्वाजः सुकेशश्च सत्यकामश्च शैव्यकः ।
गार्ग्यः सौर्यायणीचैव कौशल्यश्चाश्वलायनः ।।४।।

भारद्वाज ऋषि की सन्तान सुकेश ऋषि, शैव्य ऋषि की

सन्तान सत्यकाम, सूर्य्यवंश में उत्पन्न गार्ग्य ऋषि, अश्वलायन ऋषि की सन्तान कौशल्य ऋषि-

भार्गवश्चैवेदर्भिः कबन्धी कत गोत्रजः ।
ते समित्याणयः सर्वे ऋषिंप्रोचुः प्रणम्य तम् ।।५।।

भार्गव ऋषि की सन्तान वैदर्भि ऋषि और कात्यायन गोत्रोत्पन्न कबन्धी, इन छः ऋषियों ने अपने-अपने हाथों में लकड़ियों को लेकर महर्षि पिप्पलाद के पास पहुँच कर प्रणाम करने के बाद कहना आरम्भ किया।

भगवन् ! ब्रह्मविच्छेष्ठ ! प्राणिनां शुभचिन्तक ।
ब्रह्मविद्याप्रदानेन, बोधयास्मान् कृपान्वितः ।।६।।

भगवन् ! प्राणियों के शुभचिन्तक ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ आप हम लोगों को ब्रह्मज्ञान प्रदान करें।

ऋषिरुवाच

श्रृण्वन्तु ब्रह्मवेतारो यद् वच्मि भवतांकृते ।
भूय एव इतो गत्वा, तपः कुर्वन्तु निष्ठया ।।७।।

ऋषि ने कहना शुरू किया- हे ब्रह्मज्ञान की कामना रखने वाले ऋषियों ! जो कुछ आप लोगों से कह रहा हूँ उसे सुनें और पुनः यहाँ से जाकर श्रद्धापूर्वक तपस्या करें।

ब्रह्मचर्य्येण वर्ष भो ! कायेन मनसागिरा ।
तपत ब्रह्मज्ञानाय तप्त्वा यूयं समेत च ।।८।।

एक वर्ष पर्यन्त मन, वचन और कर्म से ब्रह्मचर्य धारण कर तपस्या करें उसके बाद फिर आवें।

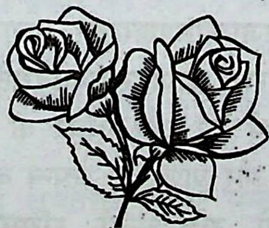
वक्ष्यामि सकलंतुभ्यं तद्यज्ज्ञातं मयाभवेत् ॥
तपस्विभ्यः प्रदत्तंहिज्ञानं सुसफलं भवेत् ॥६॥

जो कुछ जानता रहूँगा उसे आप लोगों को बताऊँगा क्योंकि तपस्वियों को ही दिया हुआ ज्ञान सफल होता है।

एवमृषेर्वचश्श्रुत्व शान्तचित्तादृढ़व्रता: ॥
वर्षम् च यापयामासुर्ब्रह्मचर्य परायणाः ॥१०॥

इस तरह ऋषि की बातों को सुनकर शान्तचित्त और दृढ़ व्रती सुकेश आदि ऋषियों ने ब्रह्मचर्यपूर्वक तपस्या में अपना एक वर्ष का समय बिताया।

इति श्री प्रश्नोपनिषदादि पिप्पलादसुकेशादि संवादे श्री सत्यनारायण कथायां प्रथमोऽध्याय: ॥



अथ श्रीसत्यनारायण कथायां द्वितीयोऽध्यायः

वर्षानन्तरमागत्य पूर्वं कबन्धी जगाद् ॥

एक वर्ष के बाद सारे ऋषि आये और उन ऋषियों में प्रथम कबन्धी ऋषि ने अपना प्रश्न किया।

कबन्धी पिप्पलादञ्च पप्रच्छविनयान्वितः ।
इमाः प्रजा प्रजायन्ते, कुतो ब्रह्मविदांवर? ।।१।।

महर्षि पिप्पलाद से कबन्धी ऋषि ने विनयपूर्वक प्रश्न किया कि हे ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ, यह प्रजा कैसे उत्पन्न हुई?

तस्य तद् वचनंश्रुत्वा पिप्पलादो महामतिः ।
जगाद सकलं तस्मै श्रद्दधानाय धीमते ।।२।।

पिप्पलाद ऋषि ने कबन्धी की बातों को सुनकर श्रद्धालु मतिमान कबन्धी से सारी बातें कहीं।

तपस्तप्त्वा प्रजाकामश्चराचर प्रजापतिः ।
मिथुनं च रयिं प्राणं समुप्पादयते पुरा ।।३।।

आदि सृष्टि में चर और अचर के स्वामी अपने तपः सामर्थ्य से रयि और प्राण को उत्पन्न करता है।

सूर्य्यः प्राणो रयिश्चन्द्रो रयिमूर्तन्निगद्यते ।
अमूर्तञ्चापिं यद्भोग्यं रयिरूपेण संस्थितम् ।।४।।

यह जो सूर्य है वह प्राण रूप है और चन्द्रमा रयि रूप है

और भी जितनी चीजें मूर्त्त और अमूर्त्त भी भाग्यार्थ हैं उन्हें रयि कहते हैं।

आदित्य उदयन प्राच्यां प्राच्यान् प्राणान् स्वरश्मिषु ।
आधत्ते सर्वकाष्ठासु तान् प्राणान् विकिरत्यपि ॥५॥

सूर्य पूर्व दिशा में उदय होता हुआ अपनी किरणों में प्राणशक्ति को धारण कर सारी दिशाओं में प्राण को बिखेरता है।

एषवैश्वानरोभूत्वा विश्वरूपो दिवाकरः ।
उदेति प्राणरूपोग्नि र्ऋचाप्येवमुदाहृतम् ॥६॥

यह विश्व को प्राण प्रदान करने वाला सूर्य सर्वत्र गर्मी प्रदान करता हुआ उदय होता है। इस बात को वेद की ऋचा भी कहती है।

विश्वरूपं हरिणं जातवेदसंपरायणं ज्योतिरेकतपन्तम् ।
सहस्त्ररश्मिः शतधवर्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्य्यः ॥७॥

यह सूर्य्य सैकड़ों प्रकार की वर्तमान प्रजा को प्राण प्रदान कर जीवन दे रहा है। यह सूर्य ही सब जगत् के भीतर काम करता हुआ सबों में शक्ति प्रदान करता हुआ ज्योतिमय रूप में उदय होता है।

प्रजापतेश्च यद् रूपंतत्तद् वच्मि समासतः ।
धार्यते च प्रजायेन रक्ष्यते पाल्यते सदा ॥८॥

प्रजापति के उन सारे रूपों को संक्षेपतः बता रहा हूँ

जिनके द्वारा प्रजा का धारण, रक्षण और पालन होता है।

संवत्सरं द्विवाभक्तं दक्षिणञ्चोतरायणम् ।
दक्षिणेन निवर्तन्ते, विपरीतं विमुक्तये ।।६।।

संवत्सर को प्रजापति कहते हैं, उसके दो विभाग हैं। दक्षिणायन और उत्तरायण। दक्षिणायन मार्ग से जाने वाला मानव जन्ममरण के चक्र में आता है, और उत्तरायण मार्ग से जानेवाला मुक्ति को प्राप्त होता है।

इष्टा* पूर्त्ते भजन्ते ये धनधान्ययुता नराः ।**
तेतु चान्द्रमसं प्राप्यावर्तन्तेचपुनः र्भुवि ।।१०।।

जो धनधान्ययुक्त मनुष्य इष्ट अर्थात् वेदविहित यज्ञ और पूर्त- (बावड़ी, कूप, तालाब और वाटिका) आदि का निर्माण कर संसार का उपकार करता हुआ गुजरता है, वह भोगयुक्त चन्द्रलोक को प्राप्त कर पुनः पृथ्वी पर जन्म लेता है।

एषपितृकृतः पन्थाः प्रजाकामा महर्षयः ।
अनेनैव च गच्छन्ति पुत्र-पौत्र-धनार्थिनः ।।११।।

यह पितृयान मार्ग है, पुत्र पौत्र और धन की कामना रखने वाले महर्षि लोग इसी रास्ते से जाते हैं।

तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धयाविद्यया तथा ।
यमादीन् सेवमानास्ते भजन्ते चोत्तरायणम् ।।१२।।

---

* इष्टः- अग्निहोत्रं तपः सत्यं देवानामुपलम्बनम् ।
आतिथ्यं वैश्वदेवं च इष्टमित्यभि धीयते ।।

** पूर्त्तेः- बापीकूप तड़ागादि देवतायतनानि च ।
अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते ।।

जो मनुष्य ब्रह्मचर्यपूर्वक ज्ञान और श्रद्धा से युक्त होकर यम नियम आदि का सेवन करता हुआ तपस्या करता है, वह उत्तरायण मार्ग से जाने वाला है।

एवं ये मनुजा मर्त्ये सर्वतोविजितेन्द्रियः ।
यतन्ते मृताभूत्वा, चरन्ति परमात्मनि ।।१३।।

इस तरह जो मनुष्य सर्वतो भावेन परब्रह्म परमात्मा में लग जाते हैं, वह मरणान्त मुक्ति पद प्राप्त करते हैं।

मासः प्रजापतिः प्रोक्तः कृष्णपक्षो रयिस्तथा ।
शुक्ले प्राणे प्रकुर्वन्ति तेनैवेष्टिं महर्षयः ।।१४।।

महीना को भी प्रजापति कहते हैं। उसमें शुक्लपक्ष प्राण है और कृष्णपक्ष रयि है। इसीलिए महर्षिगण शुक्ल पक्ष में ही यज्ञ आदि किया करते हैं।

प्रजापतिरहोरात्रो दिवा प्राणो निशारयिः ।
अतो दिवारमन्तेन य इच्छन्ति सुजीवनम् ।।१५।।

दिन और रात को भी प्रजापति कहते हैं उसमें दिन को प्राण और रात को रयि कहते हैं इसीलिए लम्बी आयु चाहने वाला मनुष्य दिन में पत्नी के साथ रमण न करे।

निशायां भार्ययासार्घ रममाणाः सुबुद्धयः ।
ब्रह्मचर्यचरन्त्येव यजाभ्योगृहमेधिनः ।।१६।।

एकमात्र सन्तान की कामना से रात्रि के समय पत्नी के साथ रमण करने वाला मनुष्य ब्रह्मचर्य का ही पालन करता है।

अन्नं प्रजापतिर्ज्ञेयं तस्माद् रेतः प्रजायते ।
रेतसा सर्वजन्तूनामाविर्भावः सुनिश्चितः ।।१७।।

अन्न को भी प्रजापति कहते हैं, अन्न से ही वीर्य उत्पन्न होता है और उसी वीर्य से सारे प्राणियों की उत्पत्ति होती है।

प्रजापतिव्रतं सम्यग् ये चरन्ति विधानतः ।
तेषां पुत्राश्चपौत्राश्च तेषांलोकः सुखावहः ।।१८।।

वेदशास्त्र द्वारा प्रतिपादित व्रत को अपनाता हुआ जो मनुष्य गुजरता है, उसे इस लोक में सुन्दर सुख के साथ-साथ पुत्र और पौत्र आदि की भी प्राप्ति होती है।

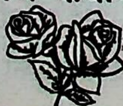
ब्रह्मचर्येण ज्ञानेन सत्य ब्रह्मबलेन च ।
तपस्यायां स्थितानाञ्च ब्रह्मलोकः प्रतिष्ठितः ।।१९।।

जो मनुष्य ब्रह्मचर्यपूर्वक सत्यब्रह्म में लीन होकर तपस्या करता है वह ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है।

तैरेव सकला मुक्तिस्तैस्तथाचामृताशनम् ।
तैरेव सच्चिदानन्दे महानन्दोऽनुभूयते ।।२०।।

वही मनुष्य सारे बन्धनों से मुक्त होकर अमृत का पान करता हुआ सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा में महान् आनन्द को प्राप्त करता है।

इति श्री प्रश्नोपनिषदिं कबन्धिपिप्पला प्रश्नोत्तरे
श्री सत्यनारायण कथायां द्वितीयोऽध्यायः



अथ श्रीसत्यनारायण कथायां तृतीयोऽध्याय:

पश्चात् कबन्धिनस्तत्र पिप्पलादं तपोनिधिम् ।
उवाच श्रद्धयोपेतः वेदर्भिस्तु महामतिः ।।१।।

कबन्धी के प्रश्नोत्तर समाप्त होने के बाद महान् तपस्वी पिप्पलाद ऋषि से श्रद्धापूर्वक वैदर्भि ऋषि ने कहा-

ऋषे ! श्रुतं मया सर्वम् यत्त्वयोक्त कबन्धिने ।
वेदसारसमायुक्तं मानवानां हिताय च ।।२।।

ऋषिवर ! आपने मानव कल्याण की बात जो वेदशास्त्र द्वारा प्रतिपादित है, उसको कबन्ध से कहा है, उसे मैंने भी सुना है।

ज्ञातुमिच्चाम्यहं देव ! प्रश्नोऽयंभवतांपुरः ।
यज्ज्ञात्वाकृत्यकृत्योऽयहं भविष्यामि धरातले ।।३।।

दिव्यगुणयुक्त ऋषिराज ! आपके सामने मेरे कुछ प्रश्न हैं जिन्हें जानना चाहता हूँ और जिनको जानकर इस धराधाम पर कृतकृत्य हो जाऊँगा।

कतिदेवा इमं देहं धारयन्ति स्वशक्तितः ।
एषुकेते प्रकाश्यन्ते एषां श्रेष्ठोहि कोमतः ।।४।।

कितने देव इस शरीर को धारण करते हैं, कितने प्रकाशित होते हैं और इनमें सर्वश्रेष्ठ कौन हैं।

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा ज्ञानरूपस्तपोनिधिः ।
क्रमेण सकलान् प्रश्नान् समाधातुं समुद्यतः ।।५।।

ज्ञान की साक्षात् मूर्ति महान् तपस्वी पिप्पलाद ऋषि वैदर्भि के प्रश्नो को सुनकर क्रमशः सभी का उत्तर देने लगे।

एकदा वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रंघ्राणंत्वचादयः ।
विवाद ते मिथश्चक्रु हं श्रेष्ठोऽस्मिदेहधृत् ।।६।।

एक समय वाक्, मन और चक्षु आदि देवों ने आपस में विवाद करना शुरू किया कि इस शरीर को धारण करने वाला मैं ही श्रेष्ठ हूँ।

वयं वाणभवष्टभ्य धारयामो दिवानिशम् ।
अस्माभी रहितोदेहो जीवेन्न क्षणमात्रकम् ।।७।।

हम सभी इस वाणरूपी शरीर को दिन रात धारण किये हुए हैं। हमसे रहित यह शरीर क्षणमात्र भी नहीं ठहर सकता है।

एवं गर्वगतान् दृष्ट्वा प्राणः प्राह विहस्यतान् ।
आत्मशक्तिन जानीथ व्यर्थं मोहं गताः समे ।।८।।

इस तरह इन सारी इन्द्रियों को गर्वयुक्त देखकर प्राण ने हँसते हुए कहा, आप लोग अपनी शक्ति को नहीं जानती हैं और मोह में पड़ कर इस तरह कह रही हैं।

आत्मानं पञ्चधाकृत्वा पञ्चस्थाने नियोज्य च ।
वाणरूपं शरीरं च धारयाम्यमोजसा ।।९।।

मैं ही अपने को पाँच भागों में करके और पाँच स्थानों

में लगाकर अपनी शक्ति के द्वारा इस वाणरूपी शरीर को धारण करता हूँ।

एवमुक्तवति प्राणे सर्वे तत्र त्वचादयः ।
स्वकार्य विमुखा जातास्तथापि जीवितं वपुः ।।१०।।

प्राण के इस तरह कहने पर सारी इन्द्रियों ने अपना-अपना काम बन्द कर दिया पर तो भी शरीर जीवित ही रहा।

ईदृशान् सकलान् दृष्ट्वा प्राह प्राणस्तु तत्क्षणम् ।
विलसन्तु चिरंचात्र वहं गच्छामि कायतः ।।११।।

इस तरह इन्द्रियों के कार्यों को देखकर प्राण ने कहा आप लोग इस शरीर में आनन्दपूर्वक रहें मैं ही इस शरीर से जा रहा हूँ।

गमनायोद्यते तस्मिन् सर्वेषां शिथिलागतिः ।
श्रोत्रयोः श्रवणेनष्टं चक्षुषोष्च विलोकनम् ।।१२।।

प्राण के जाने की तैयारी करते ही सारी इन्द्रियों की गति समाप्त हो गई, कान का सुनना बन्द हो गया और आँख का देखना बन्द हो गया।

मनसश्चिन्तनं नष्टं जिह्वा निद्रामुपागता ।
त्वचश्च स्पर्शनं ातं गात्राणां व्रिगतागतिः ।।१३।।

मन का विचारना बन्द हो गया, जिह्वा की सारी शक्ति नष्ट हो गई। त्वचा का स्पर्श करना जाता रहा, इस तरह यह शरीर गतिहीन हो गया।

सर्वेषां च यदाशक्तिर्नष्टा वपुषि सर्वतः ।
तदा सर्वे प्रधावन्तः प्राणमुचुः प्रणम्यतम् ।।१४।।

जब सारी इन्द्रियों की शक्ति नष्ट होने लगी तब सारी इन्द्रियाँ प्राण के पास पहुंचकर प्रणाम कर बोलीं।

प्राण त्वं सर्वतः श्रेष्ठो धार्यन्ते च प्रजास्त्वया ।
त्वया बिना वयं सर्वे तिष्ठन्तोऽपीह निर्बलाः ।।१५।।

हे प्राण ! तुम्हीं हम सभी में श्रेष्ठ हो, तुम्हीं ने प्रजा को धारण किया हुआ है, तुम्हारे बिना इस शरीर में रहते हुए भी हम सभी शक्तिहीन हैं।

यथा मधुकर श्रेणी मध्येराज्ञी सुमक्षिका ।
तस्या वासे तु तिष्ठन्ति गतायांतेऽनुगामिनः ।।१६।।

जैसे मधुमक्खियों के बीच रहने वाली रानी मक्खी है, जिसके रहने से सारी मधुमक्खियाँ रहती हैं और उसके चले जाने पर वे सभी अन्य मक्खियाँ भी चली जाती हैं।

तथा भवन्तमाश्रित्य स्थिताः काये बलान्विताः ।
त्वयि तत्र प्रयातेतु तिष्ठन्तोऽपि मृतावयम् ।।१७।।

इसी तरह इस शरीर में आपके निवास करने पर हम सभी इन्द्रियाँ बलयुक्त रहती हैं और आपके चले जाने पर इस शरीर में रहते हुए भी निर्बल हैं।

त्वयैव तपतेबह्विस्त्वयैव तपते रविः ।
त्वया वायुश्च पर्जन्यो धार्यतेचक्षितिस्त्वया ।।१८।।

तेरे द्वारा ही आग तप रही है, तेरे द्वारा ही सूर्य्य तप रहा

है, तेरे ही कारण हवा चलती है, और तूने ही इस पृथ्वी को धारण किया हुआ है।

रथनाभाविवारास्तत् सर्वं प्राणे प्रतिष्ठितम् ।
ऋचोयजूंषि सामानि यज्ञोज्ञानं बलं तथा ॥१६॥

जैसे रथ की नाभि में सारे आरे लगे रहते हैं उसी तरह प्राण वायु में ही सारे पदार्थ प्रतिष्ठित हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, यज्ञकर्म, ब्रह्मकर्म और क्षात्रकर्म भी प्राण में ही प्रतिष्ठित हैं।

अस्मित् वपुषि यत्कार्यं प्राणैः सर्वम् विधीयते ।
आत्मा तत्रनियन्तास्ति प्राणार्थो भोजनादयः ॥२०॥

इस शरीर में जो भी कार्य हो रहा है वह सब प्राणों के ही द्वारा है। अन्य तो केवल नियन्त्रण करती हैं। अतः प्राण के ही रक्षार्थ ये भोजन आदि दिये जाते हैं।

वह्निरूपोऽसि देवानां पितृणां प्रथमास्वधा ।
ऋषीणां चरितं त्यमथर्वांगिरसामसि ॥२१॥

हे प्राण ! तुम वसु आदि देवताओं में बहुत प्रकार के कामों को चलाने वाले हो। तुम ही उत्पन्न होनेवाले पदार्थों में पहले कल्याणकारक हो। ऋषियों में कर्मकाण्ड तुम ही हो और निश्चयात्मक ज्ञान वालों में सत्य तुम ही हो।

इन्द्रस्त्वं जलदः प्राण ! रुद्रोऽसि भूवि तेजसा ।
रक्षिता सर्व जन्तूनां सूर्य्यस्त्वं ज्योतिषां पति : ॥२२॥

हे प्राण ! तू ही वर्षा कराने वाला है। तू ही अपनी शक्ति

से इस पृथ्वी पर रूलाने वाला रुद्र है। सारे प्राणियों का रक्षक भी तू ही है, जितने भी पदार्थ प्रकाशित हो रहे हैं उनका प्रकाशक भी तू ही है।

त्वमेव जलदो भूत्वा यदा वर्षासि भूतले ।
तदा प्रजाः प्रसीदन्ति बहुधान्याद्यवाप्तये ।।२३।।

हे प्राण ! जिस समय इस पृथ्वी पर तेरे द्वारा पानी बरसाया जाता है उस समय सारी प्रजा अन्न आदि की प्राप्ति की आशा से प्रसन्न हो जाती है।

प्रणस्येदं वशे सर्वम् यत्किञ्चित् त्रिदिवे स्थितम् ।
पुत्रान् मातेव रक्षत्वं श्रीः प्राज्ञाञ्च विदेहि नः ।।२४।।

हे प्राण ! तीनों प्रकार के लोक में अर्थात् कर्मयोनि, भोगयोनि और उभययोनि तथा ऊपर, नीचे और मध्य में जो कुछ भी स्थित है वह सब तुम्हारे ही वश में है। अतः माता की भाँति पुत्रों की रक्षा कर, शोभा और ज्ञान और बुद्धि हमारे लिए प्रदान कर।

इति श्री प्रश्नोपनिषदादि वैदर्भिपिप्पलाद प्रश्नोत्तरे श्री सत्यनारायण कथायां तृतीयोऽध्यायः



अथ श्रीसत्यनारायण कथायां चतुर्थोऽध्यायः

पूर्वप्रश्नोत्तरंश्रुत्वा, कौशल्योऽपि महामतिः ।
प्रणम्य शिरसा देवं शनैः प्रश्नान्नुवाच सः ।।१।।

पूर्व के प्रश्न और उत्तरों को सुनकर महा विद्वान् कौशल्य ऋषि ने महर्षि पिप्पलाद को प्रणाम कर अपना प्रश्न शुरू किया।

कुतोऽयं जायते प्राणः कथं देहे विराजते ।
आत्मानं पञ्चधा कृत्वा कथं देव ! प्रतिष्ठते ।।२।।

भगवन् ! यह प्राण किससे उत्पन्न होता है और अपने को पाँच भागों में विभक्त कर इस शरीर में कैसे निवास करता है?

देहादुत्क्रमते केन बाह्यं धत्ते कथं तथा ।
अध्यात्मञ्च कथं धत्ते वद्मेविस्तरेण च ।।३।।

ये प्राण किन कारणों से बाहर निकलते हैं तथा बाहर के स्वरूप को धारण कैसे करते हैं और भीतर की चीजों का धारण किस तरह करते हैं, इन सारी बातों को विस्तारपूर्वक बतावें।

पिप्पलाद उवाच

कौशल्यवचनं श्रुत्वा पिप्पलादो महामुनिः ।
प्रसन्नवदनेनैव वाचा मधुरयाऽऽह सः ।।४।।

ऋषि कौशल्य के वचनों को सुनकर महर्षि पिप्पलाद ने

प्रसन्नता पूर्वक मधुर वचनों में कहना प्रारम्भ किया।

एकस्मिन् विविधान् प्रश्नान् पृच्छसिविजितेन्द्रिय ।
ब्रह्मिष्ठोसीति वेदोक्तं तद्ब्रवीमि मतं मुद्रा ।।५।।

हे जितेन्द्रिय ! आप एक ही प्रश्न में अनेक प्रश्नों को पूछ रहे हो। परन्तु आप ब्रह्मज्ञान की कामना रखने वाले हो इसलिए वेद आदि द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त को बताता हूँ।

आत्मनो जायते प्राणः देहेस्मिन्नाश्वलायन ।
यथा हि पुरुषे छाया विद्यमाने विराजते ।।६।।

हे अश्वलायन ! इस शरीर में यह प्राण* आत्मा के आने से ही आता है। जैसे पुरूष के विद्यमान रहने से ही यह छाया रहती है और न रहने पर नहीं रहती, उसी तरह आत्मा के रहने से प्राण का निवास होता है।

मनसा यत्कृतं कर्म शुभं वा यदिवाऽशुभम् ।
तेनाकृष्टेन चायाति नवद्वारपुरीमिमाम् ।।७।।

मन के द्वारा जो शुभ और अशुभ कर्म किया जाता है उसी संस्कार के द्वारा खिंचा हुआ यह प्राण इस नवद्वार रूपी शरीर में आता है।

एकत्र निवसन् राजा यथा भृत्यान् नियोज्य च ।
साध्नोति सर्वकार्याणि राष्ट्ररक्षणहेतवे ।।८।।

* शरीर में वायु पाँच प्रकार से अपना कार्य विभिन्न रूपों में करती है, यथा- प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान जिनकी व्याख्या इसी पुस्तक में विस्तार पूर्वक आगे दी गयी है।
– सम्पादक

जिस तरह एक स्थान पर बैठा हुआ राजा अपने सारे नौकरों को स्थान-स्थान पर नियुक्त कर राष्ट्र रक्षा के सारे कार्यों को सिद्ध करता है।

तथेतरान् समानो वै प्राणान् सम्यङ्निनयोज्य च ।
कारयन्नस्ति कार्याणि शरीरेऽस्मिन् विधानतः ।।९।।

उसी तरह समान प्राण विशेष प्राणों को स्थान-स्थान पर नियुक्त कर इस शरीर के सारे कार्यों को विधि-विधान से करवाता है।

कस्य प्राणस्य कुत्रास्ति गतिर्वच्मि समासतः ।
श्रृणु तद् ब्रह्मवेत्तस्त्व मेकाग्रमनसा धिया ।।१०।।

किस प्राण का कार्य किस स्थान पर है उसे संक्षेपतः बता रहा हूँ, हे ब्रह्मज्ञान की कामना रखने वाले, एकाग्र मन बुद्धि से उसका श्रवण करें।

पायूपस्थेऽस्ति चापनो मलमूत्रन्निवारयन् ।
श्रोत्रघ्राणे च नैत्रास्ये स्वयंप्राणः प्रतिष्ठते ।।११।।

पैखाना और पेशाब के रास्ते मल-मूत्र का निषतारण करता हुआ अपान वायु निवास करता है। कान, नाक, मुख और आँख में स्वयं प्राण ही विराजमान रहता है।

मध्ये तिष्ठन् समानोऽन्नमुदरस्थं विपाचयन् ।
रसं समविभागेन सर्वत्र नयते सदा ।।१२।।

समान नामक वायु पेट के मध्य भाग में निवास करता

हुआ खाये हुए अन्नों को पचाकर उसके रसों को सम भाग में सर्वत्र पहुँचा देता है।

हृद्देशे दृश्यते ह्यात्मा योगिभिर्विजितेन्द्रियैः ।
यत्रेकशतनाडीना मुक्ता संख्या विराजते ।।१३।।

हृदय स्थान में योगियों के द्वारा यह आत्मा देखी जाती है जहाँ पर एक सौ एक नाड़ियाँ विद्यमान हैं।

तास्वेकशतनाडीषु ह्येकैकस्यां शतं मताः ।
द्वासप्ततिः सहस्त्रन्तु नाडीनां यणनाकृता ।।१४।।

एक सौ एक नाड़ियों में से पुनः एक-एक नाड़ी से सौ नाड़ियाँ निकली हैं। फिर उन सौ-सौ नाड़ियों में से एक-एक में ७२-७२ सहस्त्र नाड़ियाँ हैं।

एवं नाडी सहस्त्रेषु व्यानश्चरति निर्भयः ।
अनेनैव शरीरस्य रक्षा भवति मातृवत् ।।१५।।

इस तरह इन सहस्त्रों नाड़ियों में व्यान नामक प्राण विचरता हुआ माता के तुल्य इस शरीर की रक्षा करता है।

तास्वेकेशत नाडीषु मतैकौर्ध्वगतिस्तुया ।
उदानो रमते तस्यां पुण्यपापे विलोकयन् ।।१६।।

पहली जो एक सौ एक नाड़ियाँ हैं उसमें से एक नाड़ी नाभि देश से निकली हुई ऊपर सिर की तरफ गई है जिसे योगिजन सुषुम्ना कहते हैं। उसी में पुण्य और पापों को विभक्त करता हुआ उदान नामक प्राण विचरता है।

पश्वादियोनि पापेन, देव लोक च पुण्यतः ।
उभाभ्यां नरदेहं तूदानो नयति देहिनाम्* ।।१७।।

वही उदान नामक प्राण जब पुण्य की अधिकता होती है तो आत्मा को देवताओं के घर पहुँचाता है तथा पाप की

* प्रेत्यभाव

शरीरेणेन्द्रियैः प्राणैरात्मनो मयसा भवेत् ।
सार्धं तदा भवेत् जन्म मृत्युस्तेषां वियोगतः ।।१।।

चतुर्भिः सहितो भूतैः सूक्ष्मैश्च मनसा सह ।
जीवो देहादुपैतीति देहं प्राहुर्मनीषिणः ।।२।।

गमनायोदयते जीवे मनः वाण्यां सुगच्छति ।
पश्चात् सर्वेन्द्रियैः सार्धं मनः प्राणेषु जायते ।।३।।

सूक्ष्मभूता मनः प्राणाः सूर्यस्य किरणैः सह ।
गच्छन्ति मरणान्ते वै चोर्ध्वं जीवेन खानिच ।।४।।

ऋते गर्भाशयात् यावत् आकाशे भ्रमतेहिसः ।
एष यमालयोनाम चारोहः आत्मनो भवेत् ।।५।।

यदा गर्भाशयं याति चावरोहः स उच्यते ।
नातिचिरेण सर्वं वै कालेन जायते हि तत् ।।६।।

जीवोगर्भाशयं याति निजकर्मानु गो यदा ।
मुञ्चन्ति किरणास्तत्र सूक्ष्मभूतोऽपि तं तथा ।।७।।

गर्भाशयेहि जीवोऽसौ मातुश्चैव पितुष्तथा ।
स्थूलाना तत्र भूताना मशं वै लभते त्वरा ।।८।।

वृद्धि होने पर पशु आदि नीच योनि में और पुण्य-पाप के बराबर होने पर मानव शरीर में लाता है।

अन्तस्थानां च प्राणानं कार्यमुक्तं समासतः ।
अतोग्रे बाह्यप्राणानां ब्रवीमि भवतांपुरः ।।१८।।

भीतर के रहने वाले प्राणों के बारे में संक्षेपतः कह दिया अब बाहर के रहने वाले प्राणों को बता रहा हूँ।

सूर्य्येण नयनस्थस्य प्राणस्यति बलंभवेत् ।
प्राणेन पृथिवीस्थेना पानोऽयं बलवान्भवेत् ।।१६।।

सूर्य के द्वारा आँख में रहनेवाला प्राण को बल मिलता है, और पृथ्वी में रहने वाले प्राण से अपान वायु को बल प्राप्त होता है।

अवरोहोहि जीवानां मुनिभिः प्रतिपाद्यते ।
विद्युतं सूर्यभाषवा वाय्वादीनेत्य चैति सः ।।६।।

मरणात् जननं यावत् निद्रां मूर्च्छा गतः सदा ।
जीवोऽचेतनारूपं व्रजन् तिष्ठति सर्वदा ।।१०।।

वायुमन्नं जलं प्राप्य छिद्रद्वारणे चाथवा ।
प्रभोः प्रेरणया जीवो वीर्यं याति क्रमेण सः ।।११।।

वेदान्ते कथितं चैवं रवौ मरुते जलादिषु ।
भ्रमन्नन्नं व्रजत्येष ततो वीर्ये से जायते ।।१२।।

वीर्यं गर्भाशयं प्राप्य संततिमेति गर्भतः ।
मुक्तिविरहितानां वै ह्येया जन्म मृत्युक्रिया ।।१३।।

समानो वै नभस्थेन व्यानोऽयं वायुना वली ।
बाह्यप्राण प्रभावेणान्तरस्थानांहिगतिर्भवेत् ।।२०।।

आकाश में रहने वाले प्राण से समान नामक प्राण को बल मिलता है और हवा में रहने वाले प्राण से व्यान नामक प्राण को बल मिलता है। इस तरह बाहर के प्राणों से ही भीतर प्राणों को शक्ति मिलती है।

संसारेव्यापकश्चाग्निः प्राणिनां परिपालकः ।
उदानाय बलंयच्छन् सर्वभूतान् दधातिसः ।।२१।।

संसार में व्यापक जो अग्नि है वह उदान नामक प्राण को शक्ति देते हुए सारे प्राणियों की रक्षा करती है।

यदा बाह्य प्रदोषेण कायस्योऽग्निः प्रलीयते ।
द्वितीयस्मिन तदा देहे मनोनयति देहिनम् ।।२२।।

जब बाहर के विकारों से भीतर की आग शान्त हो जाती है। उस समय यह मन जीवात्मा को दूसरे शरीर में ले जाता है।

मृत्युकाले च यंभावं संस्मरनयस्त्यजेद् वपुः ।
तद्देशं सूक्ष्मदेहेन, देहिनं नयते कृतम् ।।२३।।

मृत्यु के समय ज़िन-जिन बातों का स्मरण करता हुआ मनुष्य अपने शरीर को छोड़ता है उन्हीं स्थानों को सूक्ष्म शरीर के साथ आत्मा को कृतकर्म पहुँचा देता है।

अतो बुधैः सदाकार्यमात्म कल्याणमिप्सुभिः ।
जीवने सुन्दरं कृत्यं परलोकाय यद् भवेत् ।।२४।।

इसीलिए विद्वान् मनुष्यों को चाहिए कि यावज्जीवन सुन्दर कार्यों को करें जो जन्मान्तर में भी कल्याणप्रद हों।

इन्द्रियाणि मनोबुद्धि वशेकृत्वा विवेकिनः ।
लोकद्वय सुखार्थाय कर्म कुर्वन्त्य गर्हितम् ।।२५।।

अतः ज्ञानी जन मन, बुद्धि और इन्द्रियों को वश में रख कर लोक और परलोक में सुख की कामना से निन्दित कार्यों को छोड़कर सुन्दर कार्यों को करते हैं।

उत्पत्तिमायति स्थानं विभुत्वंञ्चैव पञ्चधा ।
अध्यात्मं चैव प्राणस्य विद्ययाऽमृतमश्नुते ।।२६।।

प्राणों की उत्पत्ति को और शरीर में प्राणों के रहने के स्थानों को तथा भीतर के रहने वाले प्राणों के कार्यों को यथावत् जान कर ही मनुष्य मोक्ष को प्राप्त करता है।

इति श्री प्रश्नोपनिषदादि कौशल्य पिप्पलाद
प्रश्नोत्तरे श्री सत्यनारायण कथायां
चतुर्थोध्यायः



अथ श्रीसत्यनारायण कथायां

पञ्चमोऽध्याय:

संतुष्टे चर्षिकौशल्ये ज्ञानरूपं तपोनिधिम् ।
गार्ग्य: सौर्यायणी तत्र पप्रच्छ शिरसा नमन् ।।१।।

ऋषि कौशल्य जब अपने प्रश्न का यथोचित उत्तर पाकर संतुष्ट हो गये उसके बाद गर्ग गोत्रीय सौर्यायणी ने महान् तपस्वी पिप्पलाद ऋषि को प्रणाम कर पूछा।

श्रुतंज्ञानामृतं सर्वम् यत्त्वयोक्तं विधानत: ।
अवशिष्टमहं किञ्चित् पृच्छामि भवतां पुर: ।।२।।

जिस ज्ञानरूप अमृत का आपने उपदेश किया है उसे मैंने भी सुना है कुछ शेष बातें मैं भी पूछता हूँ।

कानि निद्रां लभन्ते वे कानि जाग्रति सर्वदा ।
स्वप्नांश्च कानि पश्यन्ति किंचात्र लभते सुखम् ।।३।।

हे ऋषिराज ! इस शरीर में कौन सोते हैं, कौन जागते हैं तथा स्वप्नों को कौन देखते हैं और इस देह में सुख कौन प्राप्त करता है?

कस्मिन् प्रतिष्ठिता: सर्वे मनश्चक्षुस्त्वचादय: ।
इति मे विस्तरेणैव कथय त्वं महामते ! ।।४।।

हे महाज्ञानिन ! मन, चक्षु और त्वचादि इन्द्रियाँ किस में निवास करती हैं? इसे विस्तारपूर्वक बतावें।

ऋषिरुवाच

अस्तं प्रव्रजिते भानौ तस्मिन् यान्ति मरीचय: ।
प्रभाते चोदिते सूर्ये प्रचरन्ति पुनर्यथा ।।५।।

हे गार्गीय ! जिस तरह सूर्य के अस्त हो जाने पर उसकी सारी किरणें उसी के साथ अस्त हो जाती हैं, और पुनः प्रातः काल उ़दय होने पर पुनः चारों तरफ फैल जाती हैं।

एवं मनसि सर्वाणि यदा यान्तीन्द्रियाणिवै ।
न तदा केऽपि पश्यन्ति न श्रृण्वन्ति महाध्वनिम् ।।६।।

उसी तरह जब सारी इन्द्रियाँ अपने विषयों के प्रकाशक मन में एकत्रित हो जाती हैं उस समय न कोई देखता है और न बड़ी ध्वनि भी सुन सकता है।

इन्द्रियाणि यदाकार्य त्यजन्ति बपुरालये ।
तदा लोके जनैः सर्वैः सुप्तोऽयमिति कथ्यते ।।७।।

जब इस शरीर में रहते हुए भी सारी इन्द्रियाँ अपने-अपने कार्यों को छोड़ देती हैं उस समय 'सो गया' ऐसा कहा जाता है।

परन्त्वत्र दिवारात्रि जाग्रति प्राणवह्नयः ।
तेन ज्ञानविहीनाऽपि कथ्यतेनमृतातनुः ।।८।।

निद्रा की अवस्था में भी दिन रात इस शरीर में प्राणग्नि जाग्रत रहती है इसीलिए ज्ञानहीनों के द्वारा भी इस देह को मरा हुआ नहीं कहा जाता है।

संततेर्जननेऽपानो गार्हस्थे बलदायकः ।
समाधौ ब्राह्मणे ज्ञाने व्यानऽयं बलदायकः ।।६।।

गृहस्थ आश्रम में जो सन्तान पैदा होती है उसमें अपान वायु का सहयोग होता है। ईश्वर की प्राप्ति के लिए जो

समाधि आदि लगाई जाती है उसमें व्यान नामक वायु का सहयोग है।

प्राधान्ये जाग्रतोवस्था ज्ञानकाण्डस्तथा मतः ।
ऋग्वेद श्रवणं प्राणो ब्रह्मचर्याश्रमे सदा ।।१०।।

ब्रह्मचर्याश्रम में ऋग्वेद का श्रवण, जाग्रत अवस्था, ज्ञान काण्ड और प्राण वायु प्रधान माना जाता है।

अपानः कर्मकाण्डश्च स्वप्नावस्था विशेषतः ।
यजुर्वेद प्रधानोऽयं गार्हस्थे बुधैर्मतः ।।११।।

गृहस्थ आश्रम में यजुर्वेद, स्वप्न अवस्था, कर्मकाण्ड और अपान वायु प्रधान माना जाता है।

निदिध्यासनसंप्राप्तीः सुषुप्तिव्यनिमारुतः ।
सामचोपासना काण्डा वानप्रस्थे विधीयते ।।१२।।

वानप्रस्थ आश्रम में सामवेद, निदिध्यासन, सुषुप्ति अवस्था उपासना काण्ड और व्यान नामक वायु प्रधान माना जाता है।

वह्निराहवनीयश्च गार्हस्थश्च विधानतः ।
अन्वाहार्यस्तथा शस्ता आश्रमत्रितयेक्रमात् ।।१३।।

तीनों आश्रमों में तीन तरह की आग रहती है क्रमशः अहवनीय, गार्हस्थ और आन्वाहार्य।

उच्छ्वासञ्चैव निश्वास माहुतिं नयते समाम् ।
नाभिसंस्थः समानोंथं तेन जीवन्ति जन्तवः ।।१४।।

नाभि देश में रहने वाला समान नामक जो प्राण है वह

उच्छ्‌वास और निश्वास रूपी सम आहुति प्रदान करता है जिससे प्राणियों को सर्वदा जीवन प्राप्त होता है।

मननाद् याज्ञिको जीवो ह्युदानः फलमीप्सितम् ।
सोऽन्वहं गमयत्येनं, जीवंब्रह्म सनातनम् ।।१५।।

मनरूपी कारण कार्य कराने वाला यह जीवात्मा यज्ञमान है, इष्टफल उदान है वह उदान जीवात्मारूपी यज्ञमान को सुषप्ति की अवस्था में प्रतिदिन ब्रह्म के पास पहुँचाता है।

अतः शास्त्रे समाख्यातं ब्रह्मज्ञैस्तत्व दर्शिभिः ।
समाधेश्च सुषुप्तेश्च समंरूपं द्वयोरिति ।।१६।।

इसीलिए शास्त्रों में तत्त्वदर्शी ब्रह्मज्ञानियों ने कहा है कि समाधि और सुषुप्ति का एक ही रूप है।

स्वप्नेचैवात्मदेवोऽयं स्वकृत्यमनु धामति ।
श्रुतंचैव कृतञ्चैव दृष्टं पश्यति सर्वदा ।।१७।।

वही जीवात्मा स्वप्नावस्था में अपने कृतकर्मों की तरफ दौड़ता है। जाग्रत अवस्था में जो देखा, सुना और किया हुआ रहता है, स्वप्नावस्था में उसी का अनुभव करता है।

केजिज्जन्मान्तरस्यापि श्रुतं दृष्टं कृतं तथा ।
स्वप्नेऽप्यनु भवन्तीह येषां बुद्धिर्विचक्षणा ।।१८।।

जिनकी बुद्धि पर विशेष मल का आवरण नहीं पड़ा है वे जन्मान्तर के भी देखे, सुने और किये हुए कार्यों का स्वंप्नावस्था में भी अनुभव करते हैं।

अतिभूतो यदाचात्मा तेजसा परमात्मना ।
तदा पश्यति स्वप्नान् देहेऽस्मिन् सुखमेति च ।।१९।।

जिस समय इस जीवात्मा का ज्ञान परमात्मा के प्रकाश से दब जाता है उस समय यह जीवात्मा स्वप्नों को न देखकर सुषप्ति अवस्था को प्राप्त कर, अपने भीतर ही परमात्मा के सुखों को प्राप्त करता है।

यथा वयांसि सर्वत्र प्रचरन्ति दिवा भुवि ।
सायं वृक्षगृहं प्राप्य निवसन्ति मुदा सह ।।२०।।

जिस तरह दिन में पक्षिगण चारों तरफ विचरते हैं और सायंकाल अपने-अपने घोंसले को प्राप्त कर आनन्दपूर्वक निवास करते हैं।

तथा स्वप्नेवबोधे च विचरन्तीन्द्रियाणिवै ।
सुषुप्तौ तानि सर्वाणि प्रतिष्ठन्ते परमात्मनि ।।२१।।

उसी तरह जाग्रत और स्वप्नावस्था में अपने-अपने विषयों की तरफ दौड़ने वाली इन्द्रियाँ सुषुप्ति अवस्था में अपने-अपने विषयों का त्याग कर परमात्मा में आश्रय लेती हैं।

पृथिव्यादीनि भूतानि सहगन्धादिभिर्गुणैः ।
ज्ञानेन्द्रियाणि सर्वाणि धीमन् स्वविषयैः सह ।।२२।।

ज्ञानिन् ! पृथिवी आदि पञ्च स्थूल भूत अर्थात् (पृथ्वी, जल, वायु, आकाश और अग्नि) और इनके गुण (गन्ध, रस, स्पर्श, शब्द और रूप) और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ अर्थात् (आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा) तथा इनके विषय

देखने योग्य वस्तु, सुनने योग्य वस्तु, सूंघने योग्य वस्तु, रस लेने योग्य वस्तु और स्पर्श करने योग्य वस्तु।

कर्मेन्द्रियाणि भो सौम्य ! पञ्चभिर्विषयै सह ।
अन्तःकरण चत्वारि लीयन्ते तत्र तेजसि ।।२३।।

पाँच कर्मेन्द्रियाँ अर्थात् वाणी, हाथ, पाँव गुदा और उपस्थेन्द्रिय, और उनके विषय बोलना, पकड़ना आदि तथा अन्तःकरण चार (मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार) ये सारी चीजें प्रभु के तेज में छुप जाती हैं।

एषघ्राता च दृष्टा च स्प्रष्टा रसयिता तथा ।
श्रोता मन्ता च बोद्धा च कर्ता जाग्रच्चयः स्थितः ।।२४।।

जो जीवात्मा जाग्रत अवस्था में देखता, सुनता, सूँघता, रस लेता, स्पर्श करता और विचार करता है।

स एवायं सुषुप्तौवै जीवात्मा परमाक्षरे ।
ज्ञानाधिकरणत्वेऽपि बाह्यज्ञानाद् विमुच्यते ।।२५।।

वही जीवात्मा सुषुप्ति अवस्था में परमात्मा में स्थित हो जाता है उस समय ज्ञानाधिकरण होने पर भी बाहरी जगत से अलग हो जाता है।

यो यथा वस्तुजातं यत् परिज्ञाय च तत्तथा ।
विषयेभ्यो विरक्तश्च, सर्वज्ञश्चोऽक्षरं विदन् ।।२६।।

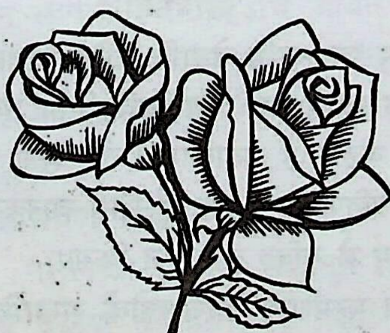
जो मनुष्य सारे वस्तुज्ञान को ठीक-ठीक रूप में यथावत्

जान लेता है और सारे विषयों से अलग होकर अविनाशी ब्रह्म को जान लेता है उसे सर्वज्ञ कहते हैं।

विज्ञानात्मा सह देवैश्च सर्वैः प्राणभूतानि सं प्रतिष्ठन्ति यत्र।
यदक्षरं वेदयतेयस्तु सौम्य ! स सर्वज्ञ सर्वमेवाऽविवेश ।।२७।।

हे सौम्य ! जो जीवात्मा सम्पूर्ण इन्द्रिय, प्राण और भूतों के साथ स्थित होकर अविनाशी ब्रह्म को जानता है वही सर्वज्ञ सभी में प्रवेश कर उसके भीतर के वृत्तान्त को जान जाता है।

इति श्री प्रश्नोपनिषदादि सौर्यायणि पिप्पलाद
प्रश्नोत्तरे श्री सत्यनारायण कथायां
पञ्चमोऽध्यायः



अथ श्रीसत्यनारायण कथायां

पष्ठोऽध्यायः

गार्ग्ये प्रश्नोत्तरे प्राप्त सत्यकामो महाव्रतः ।
पिप्पलादं प्रणम्याथ पप्रच्छ मधुराक्षरैः ।।१।।

गार्ग्ये ऋषि के प्रश्नों के उत्तर प्राप्त हो जाने पर ऋषि सत्यकाम ने पिप्पलाद ऋषि को प्रणाम कर अपनी मधुर वाणी के द्वारा प्रश्न किया।

मनुष्येषु सुधीः कश्चिदाशरीरान्तरं भुवि ।
ध्यायन् तिष्ठेद्य ओंकारं कं लोकमधिगच्छति ।।२।।

हे ऋषिराज ! कोई विद्वान् मनुष्य इस पृथ्वी पर मरण पर्यन्त ओ३म् का ध्यान करता रहता है तो वह मरने के बाद किस लोक को प्राप्त होता है?

ऋषिरुवाच

सत्यकाम प्रवक्ष्यामि वेदादि प्रतिपादितम् ।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परांसिद्धिमितो गता ।।३।।

ऋषि ने कहा- हे सत्यकाम ! तेरे प्रश्नों का उत्तर वेद शास्त्र द्वारा प्रतिपादित दे रहा हूँ जिसे जानकर मुनिगणों ने इस धरा धाम से मुक्ति को प्राप्त किया।

वाञ्छन्ति परमधाम केचिल्लोके सुखार्थिनः ।
एवं वृत्ति द्वय चैव मानवेषु विराजते ।।४।।

हे सत्यकाम ! कुछ लोग मुक्ति पद को प्राप्त करना

चाहते हैं और कुछ लोग सांसारिक सुख की कामना रखते हैं। इस तरह दो तरह की प्रवृत्तियाँ मानव समाज में विराजमान होती हैं।

एक एकेन मार्गेण विद्वान् ब्रजति सर्वदा ।
मुक्तेर्मार्गोभवेद्वाथ संसारस्य सुखावहः ॥५॥

विद्वान् मनुष्य एक समय एक ही मार्ग से गुजरता है चाहे मुक्ति मार्ग हो चाहे सांसारिक सुख का मार्ग।

अकारश्चाप्युकारश्च मकारश्च समासतः ।
वेद साररसोभूत्वोंकार रूपेण राजते ॥६॥

अकार, उकार और मकार ये तीनों अक्षर सारे वेदों के रस संक्षेपतः ओंकार के रूप में विराजमान है।

अकारैकाक्षर ध्यानेनर्चो ज्ञान बलेन च ।
भूमौसाधन सम्पन्ने नृणां गेहेऽभि जायते ॥७॥

जो मनुष्य ओंकार के एक अक्षर अर्थात् अकार का ध्यान करता है वह ज्ञानी मरणान्त सर्व साधन सम्पन्न मनुष्य के घर जन्म लेता है।

तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया समलंकृतः ।
ब्रह्मज्ञानं नरोलब्ध्वा सुखमत्र समश्नुते ॥८॥

जो मनुष्य तपस्या ब्रह्मचर्य और श्रद्धा से युक्त हो ब्रह्मज्ञान को प्राप्त कर इस धराधाम पर ही सारे सुखों को प्राप्त करता है।

ज्ञान कर्मयुतैरेव द्विमात्रमभि संस्मरन् ।
यजुर्भिरन्तरिक्षे स सोमलोकहि नीयते ।।६।।

जो मनुष्य ओंकार के दो अक्षरों का ध्यान करता है, अर्थात् ज्ञान और कर्मयुक्त होता है वह ज्ञान और कर्म के द्वारा चन्द्रलोक को प्राप्त होता है।

सोमलोके विभूर्ति तां सर्व सौभाग्य दयिनीम् ।
अनुभूय पुनर्मर्त्ये स आयाति जितेन्द्रियः ।।१०।।

वह जितेन्द्रिय मनुष्य चन्द्रलोक के उन सारे सुखों को भोग कर पुनः पृथ्वी पर जन्म धारण करता है।

ओं यत्रिमात्रकंध्यात्वा सहज्ञानादिभिस्त्रिभिः ।
ब्रह्मज्ञानसमापन्नः सोऽमलः सूर्यतेजसि ।।११।।

जो मनुष्य सम्पूर्ण ओ३म् की उपासना करता है अर्थात् ज्ञान, कर्म और उपासना इन तीनों में से होकर गुजरता है वह निर्मल मनुष्य उस परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त करता है।

यथा स्यातृत्वग् विनिर्मुक्तः सर्पोऽसौनिर्मलः शुचिः।
तथा पापाद् विनिर्मुक्तो मलादि रहितो नरः ।।१२।।

जैसे साँप अपनी केचुली को छोड़ कर निर्मल हो जाता है, उसी तरह तीनों मलों से (मल, विक्षेप और आवरण) मुक्त पवित्र हो जाता है।

सामभिर्ब्रह्म लोकस नीयते तपसि स्थितः ।
नरो वर्ष सहस्त्र च देवानां रमते मुदा ।।१३।।

तपस्या में लगा हुआ मनुष्य सामवेद के ज्ञान से ब्रह्मलोक

को प्राप्त करता है और देवताओं के सहस्त्रों वर्षों तक आनन्द का उपभोग करता है।

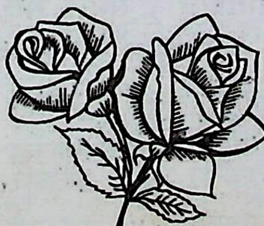
ऋग्वेद ज्ञान युक्तेन लोकेऽस्मिन् यत्सुखभवेत् ।
यजुर्भिः कर्मकाण्डेन चान्तरिक्षे सुखं तथा ।।१४।।

ऋग्वेद, ज्ञानकाण्ड और जाग्रत अवस्था से इस लोक में जो सुख होता है यजुर्वेद, कर्मकाण्ड और स्वप्न अवस्था से चन्द्रलोक में जो सुख प्राप्त होता है।

सामभिब्रह्मणि प्राज्ञ ! दहिनाञ्चैव तद् यथा ।
तत्सर्वम् योगाभिर्ज्ञातम् नान्येषाञ्चगतिस्तथा ।।१५।।

हे विद्वान् ! और साम की उपासना से ब्रह्मलोक में जो आनन्द प्राप्त होता है उसे योगिजन ही पूर्ण रूप से जान सकते हैं। दूसरों की गति उस रूप की नहीं हो सकती है।

इति श्री प्रश्नोपनिषदादि सत्यकाम पिप्पलाद प्रश्नोत्तरे
श्री सत्यनारायण कथायां
षष्ठोऽध्याय:



अथ श्रीसत्यनारायण कथायां
सप्तमोऽध्यायः

पञ्चनाममुत्तरे प्राप्ते सर्व शास्त्र विशारदः ।
सुकेशः पिप्पलादञ्च पप्रच्छ विनयान्वितः ।।१।।

पाँचों ऋषियों के प्रश्नों के उत्तर प्राप्त हो जाने पर महा विद्वान् सुकेश ऋषि ने महर्षि पिप्पलाद से अपना प्रश्न पूछा।

नाम्नाहिरण्यनाभोऽसौ कौशल्यो राजपुत्रकः ।
मामुपेत्य पुरऽपृच्छद् यत्राहमवसं किल ।।२।।

हे ऋषिराज ! जहाँ पर मैं रहता था वहाँ कोशल देश के राजा के पुत्र हिरण्यनाभ ने आकर मुझसे पूछा ।

किं षोडशकलायुक्तं त्वं वेप्सि पुरूषं प्रभो ।
एवं पृच्छतितस्मिंस्तु दत्तवानहमुत्तरम् ।।३।।

क्या आप सोलह कलायुक्त पुरूष को जानते हैं? राजकुमार के इस तरह पूछने पर मैंने उत्तर दिया।

नाहं तं पुरूषंवेदि् म राजपुत्र ! ब्रवीषियम् ।
योऽनृतां वदर्तिप्राज्ञ ! समूलं सतु नश्यति ।।४।।

हे राजकुमार ! जिस पुरूष के बारे में आप पूछ रहे हैं, मैं उसे नहीं जानता हूँ, परन्तु हे ज्ञानिन् ! मैं इतना अवश्य जानता हूँ कि जो मनुष्य असत्य बोलता है उसका सर्वनाश हो जाता है।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं देवाः लक्ष्मीः सुहृज्जनाः ।
निवसन्ति सदा तत्र सत्यं यत्र प्रतिष्ठितम् ।।५।।

जहाँ पर सत्य रहता है वहीं धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय,, देवता, लक्ष्मी और मित्रजन निवास करते हैं।

हृदि सत्यं व्रते सत्यं क्रीडायां हसने तथा ।
सत्ययुक्ता सदावाणी पापेभ्यः परिरक्षति ।।६।।

हृदय में सत्य, व्रत में सत्य, खेलने और हँसने में भी सत्य का ही व्यवहार होना चाहिए क्योंकि सत्ययुक्त वाणी सब तरह के पापों से बचाती है।

सत्यं ज्ञानमिदं ब्रह्म सत्योनारायणो हरिः ।
अतः सत्य सुरक्षायै जीवन्ति ब्रह्मवेदिनः ।।७।।

सत्य ज्ञान को ही ब्रह्म कहते हैं। सत्यनारायण ही सारे दु:खों से मुक्त करने वाले हैं इसलिए ब्रह्मज्ञानियों का जीवन ही सत्य की रक्षा के लिए होता है।

सत्येन तपते वह्निः सत्येन तपते रविः ।
सत्येन वाति वायुश्च सर्वम् सत्ये प्रतिष्ठितम् ।।८।।

सत्य के द्वारा ही आग तप रही है, सत्य ही के द्वारा सूर्य प्रकाशित हो रहा है और सत्य से ही हवा चल रही है, सब कुछ सत्य में ही विद्यमान है।

सत्यनारायणं यस्तु संस्मरेन् मनसा धिया ।
इहलोके सुखं भुक्त्वा चान्ते सत्यपुरं व्रजेत् ।।९।।

जो मनुष्य मन और बुद्धि से सत्यनारायण का ध्यान करता

है वह मनुष्य इस धराधाम पर सारे सुखों को भोग कर मरणान्तर उस परब्रह्म के धाम को प्राप्त होता है।

अनृतं सेवते यस्तु गिरा वदति चानृतम् ।
तस्य सर्वाणि नश्यन्ति चाकृतानि कृतानि च ।।१०।।

जो मानव सदा असत्य का ही सेवन करता है तथा वाणी से भी सर्वदा असत्य का ही व्यवहार करता है उसका कृत कर्म और कर्त्तव्य कर्म दोनों नष्ट हो जाते हैं।

ईदृशं वचनं श्रुत्वा राजपुत्रों दृढ़व्रतः ।
स तुष्णीं हयमारुह्य लगाम निजमन्दिरम् ।।११।।

इस तरह की मेरी बातों को सुनकर राजकुमार घोड़े पर चढ़कर अपने घर को चले गये।

ऋषिराज ! भवन्तं भो ! पृच्छमि तत्ववेदिनम् ।
इमाः कला विराजन्ते कुत्र ब्रह्म विदांवर ।।१२।।

हे ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ ऋषिराज ! आप सारे तत्वों के जानने वाले हैं इसलिए आपसे पूछता हूँ कि सोलह कलायें कहाँ निवास करती हैं?

ऋषिरुवाच

इहैवान्तः शरीरेऽस्मिन् पुरूषोऽसौ विराजते ।
यत्रचेमाः कलाः सौम्य सदा तिंष्ठन्ति सर्वतः ।।१३।।

ऋषि पिप्पलाद ने कहा हे सौम्य ! वह पुरूष इसी शरीर में विद्यमान है जहाँ पर सोलह कलायें निवास करती हैं।

ईक्षाचक्रे स जीवात्मा देहेऽस्मिन् विजितेन्द्रिय ।
कस्य वासेन मे वासो गमने गमनं तथा ।।१४।।

हे जितेन्द्रिय ! इस जीवात्मा ने विचार किया कि इस शरीर में किसके रहने से मैं रहता हूँ और किसके निकल जाने पर शरीर छोड़ कर चला जाता हूँ।

निवसन्ति यदा प्राणास्तदात्माऽसौ विराजते ।
यदा देहाद् व्रजन्तीमे सदा चात्मापि गच्छति ।।१५।।

जब तक इस शरीर में सारे प्राण निवास करते हैं तभी तक यह जीवात्मा भी शरीर में निवास करती है। जब प्राण शरीर को छोड़कर चले जाते हैं।

परमात्माऽसृजत् प्राणान् प्राणाच्छ्रद्धा समुद्भवः ।
ततः खमनिलोज्योतिर्जल भूरिन्द्रियाणि च ।।१६।।

परमात्मा ने प्रथम सभी में गति प्रदान करने वाले प्राणों को उत्पन्न किया और प्राणों से श्रद्धा उत्पन्न हुई और श्रद्धा से आकाश, हवा, आग, जल और पृथ्वी ये पञ्चभूत उत्पन्न हुए तथा उनके गुणों को जानने और काम में लगाने वाली इन्द्रियाँ पैदा हुई।

गनश्चान्नं ततो जात मन्नाद् वीर्य प्रजायते ।
तपोमन्त्राश्च कर्तव्य लोका लौकेषु नाम च ।।१७।।

उसके बाद इन इन्द्रियों को ठीक रूप से काम में लगाने वाला मन हुआ। मन और इन्द्रियों को जीवित रखने के लिए

अन्न हुआ, उस अन्न से वीर्य तप, मन्त्र अर्थात् विचार (कर्त्तव्याकर्त्तव्य) लोक (मनुष्य, पशु आदि का शरीर) और नाम उत्पन्न हुए।

स्यन्दमाना यथानद्योविलीयन्ते पयोनिधी ।
भिद्येते नामरूपे च समुद्रः प्रोच्यते बुधैः ।।१८।।

जैसे बहती हुई नदियाँ जब समुद्र को प्राप्त कर लेती हैं तो उनके पहले कें नाम और रूप समाप्त हो जाते हैं और उसे समुद्र ही कहा जाता है।

तथैव च परिद्रष्टुः कलास्ताः पुरूषायणाः ।
प्राप्य तं पुरूषं धीमन्नस्तं गच्छन्ति सर्वतः ।।१६।।

उसी तरह समाधि की अवस्था में दिखलाई देने वाली सारी कलायें जिनका परम पुरूष (परमात्मा) ही घर है, उसे प्राप्त कर लेती हैं और उनके सारे कार्य समाप्त हो जाते हैं।

भिद्येते नाम रूपे च गताषु पुरूषं तथा ।
प्रोच्यते पुरूषश्चासावकलश्चामृतस्तदा ।।२०।।

जब सारी कलायें उस परम पुरूष अर्थात् परमात्मा को प्राप्त हो जाती हैं उस समय नाम और रूप के समाप्त हो जाने पर वह पुरूष कलारहित अमृत कहा जाता है।

रथनाभाविवारास्ताः कला यत्र प्रतिष्ठिताः ।
तं वेद्यं पुरूषं विद्यन्मृत्योर्भीतिर्न संभवेत् ।।२१।।

महर्षि पिप्पलाद ने कहा- जिस तरह रथ की नाभि में

सारे आरे लगे रहते हैं, उसी तरह सारी कलायें जिसमें विद्यमान हैं उस जानने योग्य परम् पुरूष अर्थात् परमात्मा को जो जानता है उसे मृत्यु का भय नहीं रहता है।

उवाच सकलान् तत्र ऋषिराजस्तपोनिधिः ।
एतावद् ब्रह्मणोरूपं नान्यत् किंचिन्न वेदम्यहम् ।।२२।।

उन सारे ऋषियों से महर्षि पिप्पलाद ने कहा कि ब्रह्म का यही स्वरूप है, इसके अलावा और कुछ भी नहीं है और न मैं जानता हूँ।

तत्श्रुत्वा ते सुकेशाद्याः प्राप्तज्ञान महर्षयः ।
प्रणम्य दण्डवद् भूमौ प्रोचुर्मघुरया गिरा ।।२३।।

पिप्पलाद ऋषि की सारी बातों को सुनकर ज्ञान प्राप्त करके सुकेशादि ऋषियों ने साष्टांग प्रणाम कर कहा।

अस्मान् तारयसिं ब्रह्मन् ! पितानोऽसि भवार्णवात् ।
अविद्यायाः परम्पारं गतास्ते सततं नमः ।।२४।।

हे ज्ञान के सागर आप ही हम लोगों के रक्षक पिता हैं, आपने अविद्या रूपी समुद्र से हम लोगों को पार कर दिया है, अतः आपको बार-बार प्रणाम हैं।

ऋषिभ्यस्तत्वदर्शिभ्यो मनोवाक् कर्मभिर्नमः ।
येषांञ्च कृपयामर्त्यो ब्रह्मज्ञानेन पूरिताः ।।२५।।

ब्रह्म ज्ञान पल्लवित करने वाले ऋषियों को मन, वचन

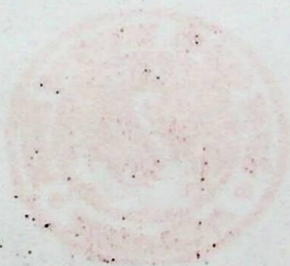
और कर्म से बार-बार प्रणाम है जिनकी कृपा से हम लोगों ने ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त किया है।

इति श्री प्रश्नोपनिषदादि सुकेशपिप्पलाद प्रश्नोत्तरे श्री सत्यनारायण कथायां सप्तमोऽध्यायः

बस ! यहीं पर यह श्री सत्य नारायण भगवान् की कथा समाप्त होती है। भाइयों ! जिन सज्जनों ने इस कथा को ध्यानपूर्वक सुना और सुन कर हृदय में धारण किया, उन सभी का कल्याण निश्चित है, ऋषियों का कहना है कि यह कथा धन, सुख एवं परिवार में समृद्धि को देने वाली है। इसलिए सभी मिलकर बोलो -

श्री सत्य नारायण भगवान की जय !!

॥ समाप्त ॥



साहित्य जगत में जिसका नाम ही काफी है



प्रकाशक

अमर स्वामी प्रकाशन विभाग

१०५८, विवेकानन्द नगर, गाजियाबाद- २०१००१

(उत्तर प्रदेश)

दूरभाष : ०१२०-२७०१०९५, चलभाषः ०९९१०३३६७१५